पूर्ण बेंच

एस. एस. संधावालिया सी.जे., प्रेम चंद जैन और हरबंस लाल, न्यायाधीश.

गुलाब सिंह और अन्य, -याचिकाकर्ता

बनाम

हरियाणा राज्य और अन्य-*उत्तरदाता।*

संशोधित सिविल रिट याचिका सं 2008 1978 *का* 5194

9 मई, 1980

पंजाब जिला अटॉर्नी सेवा नियम 1960 - नियम 5, 9 और 12 - हरियाणा राज्य अभियोजन कानूनी सेवा (समूह ए) नियम, 1979 - नियम 9 *और* 19 - भारत का संविधान *1950 - अनुच्छेद* 309 - *पात्र नहीं होने वाले व्यक्तियों* के 1960 नियमों के तहत सेवा में की गई नियुक्तियां - *1979 नियम* निरस्त करना सेवा को नियंत्रित करने वाले *1960 के नियम- 1960 के नियमों के तहत पात्र नहीं होने वाले व्यक्ति* 1979 के *नियमों के नियम* 9 *और 19* के तहत पूर्वव्यापी रूप से पात्र नहीं हैं - *क्या वैध हैं- ऐसे नियम - क्या समापन माना जा सकता है.*

हरियाणा राज्य अभियोजन विधिक सेवा (ग्रेड ए) नियम, 1979 के नियम 19 के उप-नियम (2) के पुनरावलोकन खंड को लागू करने के बाद, यह स्पष्ट है कि उप-नियम के प्रावधानों को 1 अप्रैल से कानून की किताब में दर्ज माना जाना चाहिए। इस कानूनी कथा के आधार पर उपरोक्त तिथि के बाद 1960 के नियमों के तहत पारित नियुक्ति के आदेश पूरी तरह से नियम 19 (1) के प्रावधानों के अनुसार होंगे। नतीजतन, यह आवश्यक रूप से इस प्रकार है कि नियम 19 के पूर्वव्यापी संचालन के मद्देनजर नियुक्ति के आदेशों को कानून के अनुसार माना जाना चाहिए और इसलिए, वास्तव में इसके सत्यापन की आवश्यकता नहीं थी। अन्यथा भी नियम 19 के प्रावधानों पर एक सीधी नज़र डालने से संकेत मिलता है कि यह स्पष्ट रूप से या अंतर्निहित रूप से कुछ भी अमान्य करने का इरादा नहीं रखता है, लेकिन मुख्य रूप से पद के पद पर पदोन्नति के लिए पात्रता प्रदान करता है।

अन्य पदों के पदधारियों के एक निश्चित वर्ग के जिला अटॉर्नी। इसलिए, 1979 के नियमों का न तो नियम 9 और न ही नियम 19 दूर-दूर तक समाप्त होता प्रतीत होता है। एक बार ऐसा होने के बाद, यह नहीं कहा जा सकता है कि नियम 9 और 19 भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत शक्ति का अनधिकृत और अनुचित प्रयोग थे।

(पैरा 15 और 17)।

माननीय न्यायमूर्ति प्रेम चंद जैन और माननीय न्यायमूर्ति डी एस तेवतिया *की खंडपीठ द्वारा 19* सितंबर, 1979 *को इस मामले में शामिल कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न के निर्णय के लिए एक बड़ी पीठ को मामला भेजा गया। माननीय मुख्य न्यायाधीश श्री एसएस संधावालिया, माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रेम चंद जैन और माननीय न्यायमूर्ति श्री हरबंस लाल की पूर्ण पीठ ने अंततः 9 मई,* 1980 को मामले का फैसला किया।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिका *में अनुरोध किया गया है कि उत्तरदाताओं को निर्देश देते हुए सर्टिओरारी,* मंडमस या किसी अन्य उपयुक्त रिट, निर्देश या आदेश की रिट जारी की जाए।

1. *मामले के पूर्ण रिकॉर्ड का उत्पादन करने के लिए:*

2. *अनुलग्नक 'पी-4', 'पी-5' और 'पी-6'* में दिए गए आदेशों को *रद्द किया जाए।*

3. *1979 के* नियमों के प्रावधानों *को भारत के संविधान के दायरे से बाहर* घोषित *किया जाए; और उन्हें निरस्त कर दिया जाए;*

4. *एक रिट ऑफ मैंडमस जारी किया जाए जिसमें प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाए कि वे जिला अटॉर्नी के कैडर में पदोन्नति के लिए याचिकाकर्ताओं के दावों पर विचार करें।* 3 *से* 7 को *पदोन्नत किया गया है;*

5. यह *माननीय न्यायालय कोई अन्य आदेश* भी पारित *कर सकता है जिसे वह मामले की परिस्थितियों में उचित और उपयुक्त समझे;*

6. *यह माननीय। न्यायालय वरिष्ठता, वेतन की बकाया राशि आदि की प्रकृति में सभी परिणामी राहत भी प्रदान कर सकता है;*

7. *यह भी प्रार्थना की जाती है कि याचिकाकर्ताओं के* बाद सहायक जिला अटॉर्नी/अतिरिक्त लोक अभियोजकों *के रूप में नियुक्त अभियोजन निरीक्षकों के बीच से रिट याचिका के निपटारे पर रोक लगाई जाए;*

8. *इस रिट याचिका की लागत भी याचिकाकर्ताओं को दी जा सकती है।*

माननीय मुख्य न्यायाधीश श्री एसएस संधावालिया।
माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रेम चंद जैन।
माननीय न्यायमूर्ति श्री हरबंस लाल।

जे. एल. गुप्ता। याचिकाकर्ताओं के वकील जगदीश सिंह के साथ वकील /
श्री यू.डी. गौड़, ए.जी. हरियाणा, उत्तरदाताओं की संख्या 100 1 *और* 2.
एम. आर. अग्निहोत्री, एडवोकेट, एडवोकेट अनिल सेठ के साथ, *नंबर* 3 *से* 7 के लिए।

पूर्ण पीठ का फैसला

***एस. संधावालिया,* मुख्य न्यायाधीश**

1. हरियाणा राज्य अभियोजन विधिक सेवा (समूह क) नियम, 1979 के नियम 9 और 19 की संवैधानिक वैधता को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत इस रिट याचिका में भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 16 और 309 के आधार पर परखा जाना है।.

2. दलीलों की मात्रा के बावजूद, यह मामला व्यापक रूप से संभव नहीं है और वास्तव में मुख्य रूप से उपरोक्त चुनौती वाले प्रावधानों की वैधता तक सीमित है। इसलिए, मुख्य रूप से मुद्दे में मुद्दों के संबंध में तथ्यों पर ध्यान देना पर्याप्त है। आठ याचिकाकर्ताओं को दिसंबर, 1972 में सहायक जिला अटॉर्नी के रूप में नियुक्त किया गया था, जिन्हें मई, 1976 में उप जिला अटॉर्नी के रूप में नामित किया गया था, और उनका दावा है कि उन्होंने विभिन्न तिथियों पर परिवीक्षा की अवधि सफलतापूर्वक पूरी की है और विभागीय दक्षता सलाखों को भी पार कर लिया है। नियुक्ति के समय और हाल तक जिला अटॉर्नी और सहायक जिला अटॉर्नी की सेवा की शर्तें पंजाब जिला अटॉर्नी सेवा नियम, 1960 (इसके बाद 1960 के नियमों के रूप में संदर्भित) द्वारा शासित थीं और उसके तहत नियम 9 ने सेवा में भर्ती के लिए योग्यता आदि निर्धारित की थी, जबकि नियम 12 में पारस्परिक निर्धारण की विधि निर्धारित की *गई थी*। सीनियॉरिटी। याचिकाकर्ताओं का यह कहना है कि उस समय एक अलग कैडर था जिसमें पुलिस उपाधीक्षकों, अभियोजन निरीक्षकों और अभियोजन उप-निरीक्षकों को शामिल किया गया था और इस कैडर में भर्ती किए गए व्यक्ति पुलिस विभाग के सदस्य थे और परिणामस्वरूप पूरी तरह से पंजाब पुलिस नियमों द्वारा शासित थे। यह उनका दावा है कि सहायक जिला अटॉर्नी के पद पर अभियोजन निरीक्षक की तुलना में बहुत अधिक वेतनमान था और आगे राजपत्रित दर्जा था, जबकि अभियोजन निरीक्षक का पद एक अराजपत्रित पद था।

3. यहां प्राथमिक चुनौती उत्तरदाताओं संख्या 3 से 7 को जिला अटॉर्नी के रूप में पदोन्नत करना है।

वर्ष 1974 में सरकार ने अभियोजन निरीक्षकों के कैडर को समाप्त करने और उन्हें सहायक जिला अटॉर्नी के रूप में नियुक्त करने का निर्णय लिया। दो कैडरों के बीच अंतर बनाए रखने के लिए, सहायक जिला अटॉर्नी के कैडर में उनकी नियुक्ति पर अभियोजन निरीक्षकों को अतिरिक्त लोक अभियोजक के रूप में नामित किया गया था, हालांकि उन्हें दिया गया वेतनमान याचिकाकर्ता के समान बनाया गया था। यह भी विशेष रूप से प्रावधान किया गया था कि उपरोक्त पांच प्रतिवादी और उनके वर्ग पंजाब जिला अटॉर्नी सेरिव्स पुल्स, 1960 के प्रावधानों द्वारा शासित होंगे, इस निर्णय के अनुसरण में, विभिन्न अभियोजन निरीक्षकों के साथ-साथ

अभियोजन पक्ष के पुलिस उपाधीक्षकों को भी नियुक्ति के समान पत्र जारी किए गए थे, जिसकी प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक पी/एल में है। इसके अनुसरण में, पांच उत्तरदाता 1 अप्रैल, 1974 को या उसके आसपास सहायक 1 जिला अटॉर्नी के रूप में शामिल हुए।

4. याचिकाकर्ताओं ने दावा किया कि चूंकि 5 प्रतिवादी अप्रैल, 1974 में सहायक जिला अटॉर्नी के कैडर में शामिल हुए थे, इसलिए वे अनिवार्य रूप से याचिकाकर्ताओं के साथ-साथ अन्य व्यक्तियों से भी जूनियर थे, जिन्हें पंजाब जिला अटॉर्नी सेवा नियमों के नियम 12 के शासी प्रावधान के मद्देनजर उपरोक्त तारीख से बहुत पहले नियुक्त किया गया था। नतीजतन, विभाग द्वारा जारी की गई ग्रेडेशन सूची में, पांच उत्तरदाताओं के नामों का उल्लेख याचिकाकर्ताओं के बाद और एक अलग श्रेणी में किया गया। इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि 1960 के नियमों में अतिरिक्त लोक अभियोजकों के किसी भी पद का प्रावधान नहीं था, लेकिन चूंकि वेतनमान और सेवा की अन्य शर्तें समान थीं, इसलिए उन्हें सहायक जिला अटॉर्नी के कैडर में नियुक्त माना गया था। याचिकाकर्ताओं का यह रुख है कि किसी भी स्थिति में, पांच उत्तरदाताओं को या तो पेटी-टोनर्स से जूनियर रैंक दिया गया था या मौजूदा नियमों के तहत जिला अटॉर्नी के पद पर पदोन्नति के लिए अयोग्य थे, इसके लिए रिलायंस को पंजाब जिला अटॉर्नी सेवा नियम, 1960 के नियम 5 पर रखा गया है, जिसमें *अन्य बातों के साथ-साथ* जिला अटॉर्नी के मामले में भर्ती की विधि निर्धारित की गई है। फिर भी, याचिकाकर्ताओं ने कहा कि उक्त नियम का घोर उल्लंघन करते हुए, पांच प्रतिवादियों को क्रमशः 7 मई, 1976, 2 जनवरी, 1978 और 18 सितंबर, 1978 के अनुलग्नक पी/4, पी/5 और पी/6 के तहत जिला अटॉर्नी के रूप में पदोन्नत किया गया था। इसके अलावा, ये पदोन्नतियां हरियाणा लोक सेवा आयोग के अनुमोदन के अधीन की गई थीं।.

5. 7 मई, 1976 की शीघ्र पदोन्नति को चुनौती न देने के स्पष्टीकरण के रूप में- अनुलग्नक पी/4 के माध्यम से, यह स्पष्ट किया गया है कि ऐसा इसलिए नहीं किया गया था क्योंकि पंजाब राज्य द्वारा पारित इसी तरह के आदेशों को चुनौती दी गई थी और उच्च न्यायालय के समक्ष निर्णय लंबित था, जिसे 18 मई तक नहीं दिया गया था। 1978 और उसके बाद क्योंकि पांच प्रतिवादियों की पदोन्नति लोक सेवा आयोग के अनुमोदन के अधीन थी, जिसे प्रदान नहीं किया गया था और इसलिए, मामला उथल-पुथल की स्थिति में था। नतीजतन, 20 दिसंबर, 1978 को ही इस कौर ^ में रिट याचिका दायर की गई थी और सुनवाई के दौरान, जबकि यह अभी भी बहस और निर्णय के लिए लंबित था, हरियाणा राज्य ने हरियाणा राज्य अभियोजन कानूनी सेवा (समूह ए) नियम, 1979 (इसके बाद 1978 के नियमों के रूप में संदर्भित) को प्रख्यापित किया। इस प्रकार 1960 के पूर्व नियमों को निरस्त कर दिया गया और उसके नियम 9 में इस आशय का एक विशिष्ट प्रावधान किया गया है कि सेवा में भर्ती 1979 के नियमों के परिशिष्ट 'सी' में उल्लिखित स्लैब के अनुसार उप जिला अटॉर्नी और अतिरिक्त लोक अभियोजकों के बीच से पदोन्नति द्वारा की जाएगी। वरिष्ठता के निर्धारण के लिए नियम 9 और नियम 11 के उप-नियम (2) में एक परंतुक जोड़ा गया था और अंत में कुछ पदोन्नतियों को मान्य करने के लिए, नियम 19 में इस आशय का एक विशेष प्रावधान किया गया था कि किसी भी अन्य प्रावधानों के बावजूद, अतिरिक्त लोक अभियोजक 1979 के नियमों के लागू होने से तुरंत पहले जिला अटॉर्नी के पदों पर पदोन्नति द्वारा नियुक्ति के लिए पात्र होंगे। नियम 19 को पीछे मुड़कर देखा गया

और इसे 7 अप्रैल, 1974 को लागू माना गया। याचिकाकर्ताओं की शिकायत यह है कि 1979 के नियम और विशेष रूप से नियम 9 और 19 को पांच उत्तरदाताओं और अन्य व्यक्तियों की पदोन्नति को मान्य करने और याचिकाकर्ताओं के दावे को हराने के लिए प्रख्यापित किया गया था, जो मौजूदा 1960 के नियमों के तहत उन्हें प्राप्त हुए थे। जैसा कि पहले ही देखा गया है, 1979 के नियमों के नियम 9 और 19 की संवैधानिकता की जोरदार आलोचना की गई है और एक आवश्यक परिणाम के रूप में, पांच प्रतिवादियों के अनुबंध पी/4 से पी/6 तक पदोन्नति आदेश लागू किए गए हैं।

6.संशोधित रिट याचिका पर प्रतिवादी-राज्य की ओर से दायर लिखित बयान में, यह बताया गया है कि 1974 के दंड प्रक्रिया संहिता के प्रवर्तन के परिणामस्वरूप हरियाणा सरकार ने अभियोजन निरीक्षकों को शामिल करने के लिए एक योजना तैयार की थी, जिसे विधिवत रूप से सूचित किया गया था।

उत्तरदाताओं संख्या 3 से 7 के लिए। इस प्रकार अभियोजन निरीक्षकों को उच्च वेतनमान में अतिरिक्त लोक अभियोजकों के रूप में अवशोषित किया जाना था और उन्होंने सहायक जिला अटॉर्नी ग्रेड -1 से एक अलग कैडर का गठन किया, और बाद में सरकार द्वारा निर्धारित अनुपात में सहायक जिला अटॉर्नी के साथ जिला अटॉर्नी के रूप में पदोन्नति के लिए पात्र थे। हालांकि, यह स्वीकार किया जाता है कि नियुक्ति के समान पत्र, जिसकी प्रति अनुबंध पी /एल है, प्रतिवादी संख्या 3 से 7 को विधिवत जारी किए गए थे। प्रतिवादी-राज्य का यह रुख है कि पांचों प्रतिवादी अप्रैल, 1974 में सहायक जिला अटॉर्नी के संवर्ग में शामिल नहीं हुए थे, बल्कि वे अतिरिक्त लोक अभियोजकों के विशेष संवर्ग में थे और इसलिए उनके लिए वरिष्ठता या कनिष्ठता का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। यह स्वीकार करते हुए कि 1900 के नियमों में अतिरिक्त लोक अभियोजकों के लिए किसी भी पद का प्रावधान नहीं था, फिर भी यह कहा गया है कि सहायक जिला अटॉर्नी (अब उप जिला अटॉर्नी) और अतिरिक्त लोक अभियोजकों के दो अलग-अलग कैडर थे। यह दावा किया गया है कि 1960 के नियमों का नियम 5, पांच उत्तरदाताओं के मामले में लागू नहीं हुआ था क्योंकि जिला अटॉर्नी के उच्च पद पर उनकी पदोन्नति की विधि अभियोजन निरीक्षकों के अवशोषण के लिए सरकार द्वारा तैयार की गई योजना द्वारा शासित थी। सरकारी योजना की एक प्रति अनुबंध आर-4/1 के रूप में लिखित विवरण में संलग्न की गई है। यह भी प्रतीत होता है कि 1960 के नियमों के नियम 18 के तहत, नियमों में ढील देने की पर्याप्त शक्ति थी और जहां तक जिला अटॉर्नी के पद पर अतिरिक्त लोक अभियोजकों की पदोन्नति का संबंध है, इसे शिथिल माना जाना चाहिए था।

7. जहां तक 1979 के नियमों का संबंध है, प्रतिवादी-राज्य का स्पष्ट दृष्टिकोण यह है कि इन्हें राज्यपाल द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत उचित विचार-विमर्श के बाद और स्पष्ट रूप से लोक प्रशासन के हित में तैयार किया गया था। अभियोजन एजेंसी के पूर्व सदस्यों को समान रूप से समाहित करने के लिए इस संबंध में सांविधिक शक्ति का उपयोग वैध और प्रामाणिक दोनों रूप से किया गया है।

8.उत्तरदाताओं संख्या 3 से 7 की ओर से भी इसी तरह का रुख अपनाया गया है।

9.पारित करते समय, यह देखा जा सकता है कि इस मामले की सुनवाई पहली बार एक विद्वान

एकल न्यायाधीश द्वारा की गई थी, जिन्होंने अपने द्वारा 1970 के नियमों की वैधता को चुनौती देने के मद्देनजर इसे एक खंडपीठ को भेज दिया था।

आदेश, दिनांक 10 मई, 1979। खंडपीठ के समक्ष सुनवाई के दौरान, दलीलों में कुछ संशोधनों को विधिवत अनुमति दी गई थी और स्पष्ट रूप से इसमें शामिल पेचीदा सवालों और उनके व्यापक संशोधनों को देखते हुए डिवीजन बेंच ने मामले को एक बड़ी पीठ को सौंप दिया और इसी तरह मामला हमारे सामने है।

10.याचिकाकर्ताओं के वकील श्री जे. एल. गुप्ता ने यह तर्क देते हुए अपनी दलील दी कि प्रतिवादी संख्या 3 से 7 को जिला अटॉर्नी के रूप में पदोन्नत करना, जिस समय उन्हें पारित किया गया था, मौजूदा 1960 के नियमों का सीधा उल्लंघन था और इसलिए, यह शुरू से ही अमान्य था। उपरोक्त नियमों के नियम 5 और 12 पर भरोसा करते हुए, यह बलपूर्वक तर्क दिया गया था कि अतिरिक्त लोक अभियोजकों में से जिला अटॉर्नी के पदों पर कोई पदोन्नति नहीं हो सकती है और प्रतिवादी संख्या 3 से 7 इन पदों के पदधारी थे। मूल निवेदन यह था कि 1960 के नियमों में, 1976 से 1978 के बीच भौतिक समय में, इस क्षेत्र को पूरी तरह से कवर किया गया था कि इसके दायरे के बाहर सेवा में किसी भी नियुक्ति की अनुमति नहीं दी जा सकती थी। इस संबंध में अनुलग्नक पी/6 का उल्लेख किया गया जिसमें कहा गया है कि पदोन्नति पंजाब जिला अटॉर्नी सेवा नियम, 1960 के नियम 5 (डी) के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए की जा रही है।

11.याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील का उपरोक्त तर्क त्रुटिहीन है। फिर भी, इसके बाद, यह स्पष्ट होगा कि वह इस सीमित पहलू पर एक व्यर्थ जीत हासिल करता है। इसलिए, प्रारंभ में ही यह देखा जा सकता है कि हरियाणा के विद्वान महाधिवक्ता ने स्वयं 1960 के नियमों के किसी भी प्रावधान के तहत पदोन्नति आदेशों को अनुबंध पी/4 से पी/6 तक बनाए रखने में अपनी असमर्थता को स्वीकार किया है। प्रतिवादी-राज्य की ओर से असीम स्पष्टता के साथ यह कहा गया था कि तत्कालीन मौजूदा नियमों में जिले के पदों पर पदोन्नति की बिल्कुल भी कल्पना नहीं की गई थी! अतिरिक्त लोक अभियोजकों के वकीलों से और एक आवश्यक परिणाम के रूप में, लगाए गए आदेशों के तहत प्रतिवादी संख्या 3 से 7 की नियुक्तियों को अनिवार्य रूप से अनियमित माना जाना चाहिए और मौजूदा नियमों द्वारा पूरी तरह से पवित्र नहीं किया जाना चाहिए। विद्वान महाधिवक्ता के अनुसार, ठीक इसी कारण से 1979 के बाद के नियमों को लागू करने की आवश्यकता उत्पन्न हुई और विशेष रूप से इसके नियम 19 और इसके उप-नियम (2) द्वारा पुनरावलोकन की मांग की गई। इसलिए, प्रतिवादी-राज्य की ओर से लिया गया मूल रुख यह था कि एक बार नियम 9

और 1979 के नियमों की धारा 19 लागू होती है और विशेष रूप से 1 अप्रैल, 1974 से पूर्वव्यापी प्रभाव से बाद के नियम, फिर लागू किए गए पदोन्नति आदेश, अनुलग्नक पी/4 से पी/6 जो उस तारीख के बाद पारित किए गए थे, पूरी तरह से वैधानिक प्रावधानों के अनुरूप थे और इसलिए, अजेय थे।

12. इसलिए, उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी-राज्य के रुख को ध्यान में रखते हुए, पदोन्नति आदेश पारित करने में 1960 के नियमों के किसी भी उल्लंघन का प्रश्न पूरी तरह से महत्वहीन है। मामले का मूल यह है कि क्या लागू पदोन्नति आदेश 1979 के नियमों के पूर्वव्यापी संचालन द्वारा टिकाऊ हैं।

13. अनिवार्य रूप से, यहां तर्क 1979 के नियमों के नियम 9 और 19 के प्रावधानों के इर्द-गिर्द घूमना चाहिए, जिन्हें इसलिए, बिल्कुल स्पष्ट रूप से पढ़ा जाना चाहिए: -

1. (1) सेवा में भर्ती की जाएगी, -
1. इन नियमों के परिशिष्ट सी में उल्लिखित स्लैब के अनुसार उप जिला अटॉर्नी और अतिरिक्त लोक अभियोजकों के बीच से पदोन्नति करके; नहीं तो
2. सीधी भर्ती द्वारा।

नोट: जब कोई अतिरिक्त लोक अभियोजक नहीं होते हैं, तो पदोन्नति उप जिला वकीलों के बीच से की जाएगी।

(2) पदों की कुल संख्या में से तीन-चौथाई पदोन्नत अधिकारियों द्वारा और एक-चौथाई सीधी भर्ती द्वारा संचालित किए जाएंगे;

परन्तु इस उप-नियम की कोई भी बात हरियाणा अभियोजन समूह ख सेवा के किसी सदस्य को सीधी भर्ती द्वारा भरे जाने वाले किसी भी पद पर तब तक कार्यवाहक नियुक्ति से नहीं रोकेगी, जब तक कि सीधी भर्ती की नियुक्ति नहीं हो जाती।

** ** * * *

* * * # *

" 14. (i) इन नियमों अथवा पंजाब जिला अटॉर्नी सेवा नियम, 1960 में निहित किसी भी बात के होते हुए भी,

जिन पुत्रों ने कम से कम दो वर्ष की अवधि के लिए सहायक जिला अटॉर्नी ग्रेड - 1 या अतिरिक्त लोक अभियोजक के पदों को धारण किया है, वे इन नियमों के लागू होने से ठीक पहले जिला अटॉर्नी के किसी भी पद पर पदोन्नति द्वारा नियुक्ति के लिए पात्र होंगे।

पहली दो पोस्ट	सहायक ग्रेड -1। जिला वकील
तीसरी पोस्ट	अतिरिक्त सार्वजनिक अभियोक्ता;
चौथा पोस्ट	सहायक ग्रेड -1। जिला वकील
पांचवीं पोस्ट	अतिरिक्त सार्वजनिक अभियोक्ता;
छठे और सातवें पद।	सहायक जिला वकील, ग्रेड -1 और उप जिला अटॉर्नी।

15. *यह नियम 1 अप्रैल,* 1974 को लागू माना जाएगा।.

16. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील का मुख्य तर्क, यह ध्यान देने योग्य है कि 1 अप्रैल, 1974 से इसके प्रावधानों को पूर्वव्यापी प्रभाव देने वाले नियम 19 के उप-नियम (2) को याचिकाकर्ताओं की ओर से हमारे सामने कोई चुनौती नहीं दी गई थी। ऐसा इसलिए है क्योंकि 1979 के नियम भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करके तैयार किए गए थे और अब यह अच्छी तरह से तय है कि इस तरह से बनाए गए नियम पूर्वव्यापी प्रभाव से काम कर सकते हैं। यदि इस पेटेंट प्रस्ताव के लिए अधिकार की आवश्यकता थी, तो यह बीएस वडेरा आदि में अंतिम न्यायालय की निम्नलिखित स्पष्ट टिप्पणियों में मौजूद है / बहुत। *भारत संघ और अन्य।*

अनुच्छेद..... 309 के परंतुक में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि

'इस प्रकार बनाए गए कोई भी नियम, ऐसे किसी अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, प्रभावी होंगे। संविधान में प्रयुक्त स्पष्ट और सुस्पष्ट अभिव्यक्तियां अवश्य दी जानी चाहिए।

(1-ए) 1969 एसएलआर 6.

उनका पूर्ण और अप्रतिबंधित अर्थ, जब तक कि किसी भी सीमा द्वारा बचाव न किया जाए। नियम, जिन्हें 'संविधान के प्रावधानों के अधीन' होना है, ऐसे किसी अधिनियम के प्रावधानों के अधीन प्रभावी होंगे। अर्थात्, यदि उपयुक्त विधान-मंडल ने अनुच्छेद 309 के अधीन कोई अधिनियम पारित किया है, तो परंतु परंतु

किसी अधिनियम के अभाव में, उपयुक्त विधान-मंडल के, इस विषय पर, हमारी राय में, *राष्ट्रपति द्वारा या ऐसे व्यक्ति द्वारा, जो वह निदेश दे, बनाए गए नियम प्रभावी होंगे, भावी प्रभाव और पूर्वव्यापी दोनों तरह से इसका पूर्ण प्रभाव होना चाहिए।* ऊपर उल्लिखित सीमाओं के अलावा, ऐसे नियमों के संचालन के दायरे के बारे में अनुच्छेद 309 के परंतुक द्वारा लगाया गया कोई अन्य नहीं है। दूसरे शब्दों में, जब तक कि उन पर भाग 3 या किसी अन्य संवैधानिक प्रावधान के उल्लंघन जैसे आधारों पर महाभियोग नहीं चलाया जा सकता है, तब तक उचित प्राधिकारी द्वारा बनाए जाने पर उन्हें लागू किया जाना चाहिए।

उपर्युक्त स्थापित कानूनी स्थिति को ध्यान में रखते हुए, श्री जे. एल. गुप ने उपरोक्त नियम 19 की पुनरावलोकनशीलता पर सवाल नहीं उठाया और वास्तव में नहीं कर सकते थे। इसी तरह, इस संदर्भ में यह भी रेखांकित किया जाना चाहिए कि उन्होंने इस आशय का कोई तर्क भी नहीं दिया कि लागू किए गए पदोन्नति आदेश, अनुलग्नक पी/4 से पी/3 तक, किसी भी तरह से उपरोक्त नियम 9 और 19 के विपरीत या उल्लंघन में थे। यह अनिवार्य रूप से इस बात का पालन करेगा कि यदि नियम 9 और 19 के संविधान को बरकरार रखा जाता है, तो अपरिहार्य पुनरावलोकन अनुबंध पी/4 से पी/6 के आसपास सुरक्षा का लबादा फेंक सकता है।

17. नियम 9 और 19 की संवैधानिकता का विरोध करते हुए, याचिकाकर्ताओं के हमले के लिए विद्वान वकील का भाला-सिर भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 पर टिका था। यह प्रस्तुत किया गया था कि नियम 9 और 19 का उद्देश्य पदोन्नति आदेशों को अनुलग्नक पी/4 < पी/6 में मान्य करना था, जो उनके पारित होने के समय 1960 के नियमों का स्पष्ट उल्लंघन था और विद्वान वकील के अनुसार, यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत शक्ति का अनधिकृत और अनुचित प्रयोग था। यह तर्क दिया जाना चाहिए कि जो अनियमित या मौजूदा कानून के विपरीत था, उसका सत्यापन विधायिका के दायरे में है, जिसके पास पूर्ण शक्तियां हैं, लेकिन भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत बनाया गया कोई भी नियम ऐसा नहीं कर सकता है और उसे पवित्र या वैध नहीं बना सकता है।

सामग्री के समय कानूनी नहीं था। इस संदर्भ में प्राथमिक निर्भरता मैसूर *राज्य बनाम मैसूर पर* थी । *पद्मनाभाचार्य और अन्य,* (1) और *आर. एन. नंजुंदप्पा* बनाम *थिम्माव और एक अन्य,* (2)।

18.यह स्पष्ट है कि उपरोक्त तर्क को आकर्षित करने के लिए, पहले तथ्यात्मक या कानूनी रूप से यह पाया जाना चाहिए कि नियम 9 और 19 संक्षेप में समापन हैं। यदि ऐसा है, तो केवल उपर्युक्त विवाद ही विचार के लिए उठेगा, जबकि दूसरी ओर यदि यह माना जाता है कि नियम 19 के पूर्वव्यापी प्रभाव के आधार पर, पदोन्नति आदेश उसके अनुरूप हैं, तो यह स्पष्ट होगा कि ये *वास्तव में* वैध होंगे और उन्हें मान्य या पवित्र करने का कोई सवाल ही नहीं उठेगा। इसलिए, यहां पहला और प्राथमिक प्रश्न यह है कि क्या नियम 19 की स्वीकृत प्रासंगिकता को ध्यान में रखते हुए, पदोन्नति आदेश पी/4 से पी/6 को पारित होने पर वैध माना जाना चाहिए।

19. प्रश्न का उत्तर मुझे स्पष्ट रूप से और पूरी तरह से प्रतिवादी-राज्य द्वारा अपनाए गए रुख के पक्ष में प्रतीत होता है। एक बार जब नियम 19 के उप-नियम (2) के पूर्वव्यापीता खंड को प्रभावी किया जाना है, तो यह स्पष्ट है कि उप-नियम के प्रावधानों को 1 अप्रैल, 1974 से कानून की किताब में शामिल माना जाना चाहिए। इस कानूनी कल्पना के आधार पर (और जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, प्रावधान की पुनरावलोकनशीलता को कोई चुनौती नहीं दी जा सकती थी या रखी गई थी) अप्रैल, 1974 के पहले दिन के बाद पारित किए गए अनुलग्नक पी/4 से पी/6 के आदेश, जो स्पष्ट रूप से नियम 19 (1) के प्रावधानों के अनुसार होंगे। यह दोहराए जाने योग्य है कि याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील ने यह तर्क देने का दूर-दूर तक प्रयास नहीं किया कि लागू पदोन्नति आदेश किसी भी तरह से उपरोक्त प्रावधान या 1979 के नियमों के नियम 9 के साथ संघर्ष में थे। नतीजतन, यह आवश्यक रूप से इस प्रकार है कि नियम 19 के पूर्वव्यापी संचालन के मद्देनजर आक्षेपित आदेशों को कानून के अनुसार माना जाना चाहिए और इसलिए, वास्तव में इसके सत्यापन की आवश्यकता नहीं थी। अन्यथा भी नियम 19 के प्रावधानों पर एक सीधी नज़र डालने से संकेत मिलता है कि यह स्पष्ट रूप से या अंतर्निहित रूप से कुछ भी अमान्य करने का इरादा नहीं रखता है, लेकिन मुख्य रूप से अन्य पदों के पदधारियों के एक निश्चित वर्ग के जिला अटॉर्नी के पद पर पदोन्नति के लिए पात्रता प्रदान करता है। इसलिए, 1979 के नियमों का न तो नियम 9 और न ही नियम 19 मुझे ऐसा प्रतीत होता है।

1. 1967 एस एल आर 8.
2. ए.आई.आर. 1972 एस.सी. 1767.

दूरस्थ रूप से समापन। एक बार ऐसा होने के बाद, यह स्पष्ट है कि इस धारणा पर टिके याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील का तर्क आवश्यक रूप से टूट जाना चाहिए।

20. यद्यपि यह मामला चुनौती दिए गए प्रावधानों के सिद्धांत और भाषा पर स्पष्ट प्रतीत होता है, प्राधिकरण उपरोक्त दृष्टिकोण के समर्थन में कमी नहीं है। राज कुमार *बनाम* राज कुमार *भारत संघ और अन्य,* (3), अलागिरिस्वामी, जे. न्यायालय की ओर से बोलते हुए इस प्रकार बोले-

> " एक बार जब कोई कानून किसी विशेष तारीख से पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू हो जाता है, तो संशोधन किए जाने से पहले ही अधिनियम के तहत की गई सभी कार्रवाइयों को संशोधित अधिनियम के तहत लिया गया माना जाएगा और पहले से की गई किसी भी कार्रवाई को मान्य करने का कोई सवाल ही नहीं हो सकता है, बशर्ते कि यह उस तारीख के बाद हो जिस तारीख से संशोधन को पूर्वव्यापी प्रभाव दिया गया हो। सत्यापन के विशेष रूप का सवाल हमेशा एक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करेगा और सभी परिस्थितियों के लिए कोई सामान्य सूत्र तैयार नहीं किया जा सकता है। यह कहने के लिए पर्याप्त है कि वर्तमान मामले में अपीलकर्ता के खिलाफ की गई कार्रवाई संशोधित नियम के प्रभावी होने की तारीख के बाद की तारीख पर थी और इसलिए, संशोधित नियम के अनुसार कार्रवाई कानूनी रूप से एक वैध कार्रवाई है और इसके संबंध में एक वैध प्रावधान

की कोई आवश्यकता नहीं है।

21. श्री गुप्ता ने संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के आधार पर नियम 9 और 19 की संवैधानिकता को चुनौती देने के लिए आधे-अधूरे मन से बात की। इस संदर्भ में उठाया गया एकमात्र तर्क 14 मई, 1979 को नियमों के एक बाद के सेट की घोषणा पर आधारित था, अर्थात्; हरियाणा राज्य अभियोजन विधिक सेवा (ग्रुप-बी) नियम, 1979 14 मई, 1979 की इस घोषणा के नियम 11 के 1979 के नियम 9 और 19 के साथ टकराव की आशंका के आधार पर यह दलील दी गई कि संविधान के समानता के प्रावधानों का उल्लंघन किया गया है। तर्क केवल ध्यान देने और अस्वीकार करने के लायक है। मैं यह देखने में असमर्थ हूं कि नियमों के एक अलग सेट की घोषणा कैसे की जाती है।

1. ए.आई.आर. 1975 एस.सी. 1116.

1979 के नियम किसी भी तरह से मौजूदा नियम 9 और 19 की संवैधानिकता या अन्यथा का उल्लंघन करेंगे। श्री गुप्ता संविधान में निहित कानून के समक्ष समानता के शासन के किसी भी उल्लंघन को दिखाने में पूरी तरह से असमर्थ थे और वास्तव में जब उनके द्वारा उठाए गए विवाद की अंतर्निहित अव्यवहार्यता का सामना किया गया, तो उन्होंने इस बिंदु पर गंभीरता से जोर नहीं दिया।

22. कोई अन्य तर्क नहीं दिया गया था और उपरोक्त चर्चा के आलोक में, हरियाणा राज्य अभियोजन कानूनी सेवा (समूह 'ए') नियम, 1979 के नियम 9 और 19 की संवैधानिक वैधता को बरकरार रखा जाता है। अनिवार्य रूप से आक्षेपित आदेशों को चुनौती देते हुए, अनुलग्नक पी/4 से पी/6 भी विफल हो जाता है। रिट याचिका में कोई दम नहीं है और इसे खारिज किया जाता है। हालांकि, पार्टियों को अपनी लागत वहन करने के लिए छोड़ दिया जाता है।

प्रेम चंद जैन, जे.-मैं सहमत हूं.

हरबंस लाई, *जे-मैं सहमत हूं।*

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

लक्ष्य गर्ग
प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी
चरखी दादरी , हरियाणा